जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

मुक्ति का मार्ग शान्ति का मार्ग है, तनाव का नहीं,व्यग्रता का नहीं।
– बिन्दु में सिन्धु, पृष्ठ – 20

वर्ष : 26, अंक : 16
नवम्बर (द्वितीय) 2003
सम्पादक : पण्डित रतनचन्द भारिल्ल
प्रबन्ध सम्पादक : पण्डित संजीवकुमार गोधा
आजीवन शुल्क : 251 रुपये
वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिविर सानन्द सम्पन्न

कोल्हापुर (महा.) : यहाँ दिनांक 29 अक्टूबर से 4 नवम्बर, 2003 तक प्रथम बार ही सरोज स्मारक भवन एवं सर्वोदय स्वाध्याय समिति, कोल्हापुर द्वारा आयोजित वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर अनेक सफलताओं के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ।

दिनांक 29 अक्टूबर को प्रात: शिविर का उद्घाटन समारोह श्री अरविन्दजी जैन के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ; जिसमें श्री दिलीपजी शेटे सभा के अध्यक्ष थे। मुख्य अतिथि श्री गणपतरावजी रोटे, श्री धनचंदजी पाटील तथा श्री महावीरजी जैन थे। ब्र. श्री यशपालजी जैन जयपुर, पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री नागपुर, पण्डित अमोलजी संघई शास्त्री कातनेश्वर आदि विद्वान भी मंचासीन थे।

इस अवसर पर प्रतिदिन ब्र. यशपालजी जैन द्वारा प्रात: जिनधर्म प्रवेशिका व रात्रि में प्रवचनसार ग्रंथ पर सारगर्भित प्रवचन हुए। पण्डित राकेशकुमारजी द्वारा प्रात:, दोपहर व रात्रि में समयसार, नाटक समयसार, प्रवचन रत्नाकर के आधार से निश्चय-व्यवहार स्तुति पर मार्मिक व्याख्यान हुए एवं पण्डित अमोलजी संघई द्वारा प्रात: व सायंकाल मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवे अधिकार एवं योगसार ग्रंथ पर सुश्राव्य प्रवचन हुए।

दोपहर की व्याख्यानमाला में पण्डित जिनचंदजी आलमान शास्त्री हेरले, पण्डित विक्रांतजी शहा शास्त्री सोलापुर, ब्र. जितेंद्रजी चंकेश्वरा अकलूज, पण्डित सुरेंद्रजी पाटील मलकापुर, पण्डित दिग्विजयजी आलमान शास्त्री हेरले, पण्डित शांतिनाथजी पाटील, वसगडे आदि विद्वानों के विभिन्न विषयों पर व्याख्यान हुए। तथा पं. शीतलजी हेरवाडे शास्त्री कोल्हापुर, पं. भरतजी अलगौंडर शास्त्री, पं. शीतलजी आलमान शास्त्री व पं. अनिलजी आलमान शास्त्री द्वारा विभिन्न विषयों की बालकक्षाएँ ली गई। पं. अभिनन्दनजी पाटील, पं. अभिजीतजी पाटील, पं. रविन्द्र आलमान, पं. कीर्तिकुमार पाटील, पं. मिलिंद केटकाले, व पं. प्रसन्न शेटे आदि छात्र विद्वानों का भी कार्यक्रम संचालन में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

इस मांगलिक अवसर पर संगीतमय **श्री पंचपरमेष्ठी मण्डल विधान** का आयोजन किया गया। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के स्नातक विद्वानों द्वारा सम्पन्न कराए गए। प्रतिदिन रात्रि प्रवचन के पश्चात् शुद्धात्म मण्डल कोल्हापुर एवं अध्यात्म मण्डल

(शेष पृष्ठ 4 पर .....)

आगामी कार्यक्रम ह्न

फैडरेशन का 27वाँ राष्ट्रीय अधिवेशन एवं आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

गुरुवार, 25 दिसम्बर से सोमवार, 29 दिसम्बर 2003 तक

प्रतिवर्ष दिसम्बर माह में आयोजित होनेवाला अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का सत्ताईसवाँ राष्ट्रीय अधिवेशन इस वर्ष श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट द्वारा निर्माणाधीन **सिद्धायतन में रविवार, 28 दिसम्बर से सोमवार, 29 दिसम्बर 2003 तक** आयोजित होगा।

इस वर्ष अधिवेशन का आयोजन चिन्तन शिविर के रूप में किया जा रहा है, जिसका केन्द्रबिंदु **बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संगठन की भूमिका, आवश्यकता और उपयोगिता** पर केन्द्रित होगा।

इस अवसर पर **दिनांक 25 दिसम्बर से 29 दिसम्बर 2003** तक **पंचदिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर** का भी आयोजन किया जा रहा है। जिसमें पण्डित उत्तमचन्दजी जैन सिवनी, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन बिजौलियाँ, पण्डित सुनीलजी शास्त्री प्रतापगढ़ आदि विद्वानों के प्रवचन एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा। सभी शाखाओं के कमसे कम दो प्रतिनिधियों का अधिवेशन में सम्मिलित होना आवश्यक हैं। आप अपने पहुँचने की पूर्व सूचना जयपुर कार्यालय या निम्नांकित पते पर अवश्य भेजे -

मस्ताई श्री प्रेमचन्दजी जैन
मु. पो. घुवारा, जिला. छतरपुर (म.प्र.)
फोन : (07689) 255732, 255632

ह्न प्रबंधक, अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन

सम्पादकीय –

हरिवंश कथा 39

– रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे ....)

कुमार वसुदेव ने कहा ह्न एकबार मैं श्रीवास्ती नगरी में जा पहुँचा। मैंने वहाँ जिनमन्दिर के आगे मृगध्वज केवली की प्रतिमा और महिष(भैंसे) की मूर्ति देखी, जो कभी कामदत्त सेठ ने स्थापित की थी।

जनता के आकर्षण के लिए सेठ ने एक कामदेव एवं रति का चित्ताकर्षक, मनमोहक मन्दिर भी बनवाया था। जनसमूह कामदेव–रति के मन्दिर के आकर्षण से आते और साथ में जिनमन्दिर के दर्शन भी करते एवं मृगध्वज केवली और महिष (भैंसे) की मूर्तियाँ देखकर उनके विषय में जानने की जिज्ञासा से उनका वृत्त भी सुनते। केवली के पूर्व वृतान्त को सुनकर स्वयं केवली होने की भावना से भर जाते। वे सोचते, *'जब मृगध्वज केवली हो सकते हैं तो हम क्यों नहीं ?'* इसतरह मृगध्वज केवली और महिष के वैराग्य प्रेरक पूर्वभवों का वृतान्त सुनकर संसार की विचित्रता से विरक्त होकर अनेकों स्त्री–पुरुष प्रतिदिन आत्मकल्याणकारी जिनधर्म को धारण कर लेते।

यह पूरा जिनमन्दिर प्रांगण *'कामदेव के मन्दिर'* के नाम से प्रसिद्ध था और इसे देखने के कौतुकवश आये लोगों को मृगध्वज केवली का दर्शन जिनधर्म की प्राप्ति का कारण बनता था।''

उपर्युक्त कथन से ऐसा सिद्ध होता है कि जिन प्राचीन जिनमन्दिरों में अन्य देवी–देवताओं के आकर्षक रागात्मक चित्र उकेरे हुए मिलते हैं, अथवा मूर्तियाँ मिलती हैं, उनके पीछे तत्कालीन राग–रंग में मस्त जनों को आकर्षित करने मात्र का पावन उद्देश्य रहा होगा, न कि इन्हें पूजने/मानने का। धीरे–धीरे लोग उस मूल उद्देश्य से भटक गये और उन्हें ही देव–देवियों के मनोरथों की पूर्ति का साधन मानकर उन्हीं की पूजा करने लगे। अस्तु :ह्न

उसी कामदत्त सेठ के वंश में अनेक पीढ़ियों के बाद 'कामदेव' नामक एक सेठ भी हुआ। उसकी *बन्धुमती* नाम की एक कन्या थी, जो निमित्त ज्ञानी की घोषणा के अनुसार कामदत्त सेठ द्वारा वसुदेव को प्रदान कर दी गई। उसी समय नगरी में चारों ओर यह समाचार फैल गया कि सेठ कामदेव के लिए पुण्यशाली, प्रतापवंत अद्भुत जामाता मिल गया है। इस समाचार से प्रेरित होकर राजा ने, अन्तपुर की स्त्रियों ने और नगरवासियों ने वसुदेव को कौतूहल से देखा। राजपुत्री *प्रियंगुसुन्दरी* ने भी किसी तरह छिपकर वसुदेव को देख लिया। उन्हें देखते ही वह इतनी मोहित हो गई कि उन्हें पाये बिना उसका भोजन–पानी भी छूट गया, उसे राज्य के सभी ठाट–बाट और सुख–साधन अरुचिकर लगने लगे। अतः उसने द्वारपाल द्वारा वसुदेव के पास यह संदेश भेजा कि आप राजपुत्री को स्वीकार करो, अन्यथा वह मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी। वह आपके बिना जीवित नहीं रह सकती।

वसुदेव पहले तो किंकर्तव्यविमूढ़ से हो गये, फिर थोड़ी देर बाद सोच विचार कर बोले ह्न हे द्वारपाल। तुम प्रियंगुसुन्दरी से कहो कि अभी कुछ दिन ठहरो। द्वारपाल वसुदेव का आश्वासन पाकर आशान्वित होकर प्रियंगुसुन्दरी ने ऐसा मान लिया, मानो मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया है।

एक दिन रात्रि में वसुदेव बन्धुमती के साथ शयन कर रहे थे कि ह्न *ज्वलनप्रभा नाम की दिव्य नागकन्या* ने आकर उन्हें जगा दिया। उस दिव्य नागकन्या को देख वे विचार करने लगे कि यह कौन नारी यहाँ आयी है, जिसके शिर पर नाग का चिह्न है?

वार्ता करने में निपुण उस नागकन्या ने कुमार को बाहर बुलाया विनयपूर्वक अशोक वाटिका में ले जाकर बोली ह्न ''हे धीर–वीर ! आप मेरा परिचय एवं मेरे यहाँ आने का कारण जानना चाहते हैं। सुनिये !

चन्दनवन नगर में एक अमोघदर्शन राजा था। उसकी चारुमती रानी थी। उनसे उत्पन्न चारुचन्द्र पुत्र था। उसी नगर में रंगसेना वैश्या की एक कामपताका पुत्री थी, जो सचमुच काम की पताका के समान अति सुन्दर थी। एक बार धर्म–अधर्म के विवेक से रहित राजा अमोघदर्शन ने यज्ञदीक्षा के लिए यज्ञोत्सव किया। उसमें कौशिक ऋषि भी आये थे। उस उत्सव में कामपताका वैश्यापुत्री ने अत्यन्त आकर्षक नृत्य किया, जिसे देख कौशिक ऋषि जैसे बड़े तपस्वी का मन भी विचलित हो गया, अन्य साधारण की तो बात ही क्या ? यज्ञोपरान्त राजपुत्र चारुचन्द्र ने उस कन्या को अपना लिया; परन्तु कौशिक ऋषि भी उस कामपताका पर रीझा था, अतः वह भी राजा अमोघदर्शन के पास गया और स्वयं के लिए उसकी याचना करने लगा। किन्तु कामपताका को तो अमोघदर्शन का पुत्र चारुचन्द्र पहले ही ब्याह चुका था। इसकारण कन्या न मिलने से ऋषि कौशिक को बहुत क्लेश हुआ और उसने न केवल संकल्प किया बल्कि संकल्प को प्रगट भी कर दिया कि ह्न 'मैं साँप बनकर राजा अमोघदर्शन को डसूंगा।'

ऋषि कौशिक के संकल्प अनुसार राजा अमोघदर्शन ने अपनी अल्प आयु शेष मानकर जिनदीक्षा ले ली और अपनी गर्भवती रानी चारुमती को तपस्वियों के आश्रम में भेज दिया। वहाँ रानी ने ऋषिदत्ता कन्या को जन्म दिया। एक बार उस कन्या ने १२ वर्ष की उम्र होने पर चारण ऋद्धिधारी मुनि के पास ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया, परन्तु धीरे–धीरे यौवन को प्राप्त होने पर उसके रूप–लावण्य से पुरुषों के मन मोहित होने लगे। (क्रमशः)

कहान-संदेश

धर्मी की मंगल भावना

24

श्री समयसार ग्रन्थ के पाचवीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि ह्न गुरु के अनुग्रह से मुझे अन्तर में आनन्द का जो प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है, उसके द्वारा मैं अपने निजवैभव से एकत्व-विभक्त भगवान आत्मा को दर्शाता हूँ, उसे अपने अनुभव से प्रमाण करना। तेरे भगवान आत्मा में अनन्त केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हो ह्न ऐसी शक्ति विद्यमान है। उसे स्मरण करके अनुभव से प्रमाण कर ! **वर्तमान में केवली भगवान का विरह है। उसे तू भूल जा और जिसमें अनन्त केवलज्ञान पर्यायों की शक्ति भरी है ह्न ऐसे अपने भगवान आत्मा का स्मरण कर और उसे अनुभव से प्रमाण कर !**

वीतराग भावस्वरूप आत्मा है, वह वीतराग भाव से ही प्राप्त होता है; सर्वज्ञ परमात्मा के प्रति प्रेम का (राग का) उसमें किंचित मात्र भी अवकाश नहीं हैं। शरीर, मन, वाणी को भूल जा ! राग को भूल जा तथा एक समय की पर्याय को भी भूल जा ! **आकाश के अनन्त प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे गुण आत्मा में हैं और एक-एक गुण में अनन्त गुणों का रूप हैं तथा एक-एक गुण की पर्याय में षट्कारक हैं ह्न ऐसा भगवान आत्मा** तीन लोक का नाथ है; परन्तु स्वस्वरूप को भूलकर कौड़ी-कौड़ी के लिए भिखारी बना घूम रहा है।

जिसे यथार्थ दृष्टि प्रगट हुई है, उसे दृष्टि के जोर में मात्र ज्ञायक आत्मा ही प्रतिभासित होता है, शरीरादि अन्य परद्रव्य कुछ भी भासित नहीं होते। भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासित होता है। दिन में तो भिन्न भासित होता है, किन्तु रात्रि को नींद में भी निराला ही भासित होता है। सम्यग्दृष्टि को भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है; परन्तु बाह्य वर्तन में भी किन्ही संयोगों में उसकी ज्ञान-वैराग्य शक्ति भिन्न प्रकार की रहती है। बाह्य से चाहे जैसे प्रसंग में (संयोग में) युक्त दिखाई दे; तथापि ज्ञायक तो ज्ञायकस्वरूप ही भासित होता है। विभाव से भिन्न ज्ञायकस्वरूप नि:शंक भासित होता है। सारा ब्रह्माण्ड बदल जाए, फिर भी वह स्वरूपानुभव में नि:शंक वर्तता है। ज्ञायक पर आरूढ़ होकर ऊर्ध्वरूप से विराजता है। दूसरे सब संसार में ही रह जाते हैं। चाहे जैसे शुभभाव आए, तीर्थंकर गोत्र तक का शुभभाव आवे; तथापि वह जीव संसार में ही रहता है।

निश्चयदृष्टि से प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप ही है। जिनवर और जीव में फेर नहीं हैं। भले ही वह एकेन्द्रिय का जीव हो या स्वर्ग का जीव हो। यह सब पर्याय में है, वस्तुस्वरूप से तो जीव परमात्मा ही है। जिसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर से हटकर स्वरूप में स्थिर हुई है, वह तो अपने को तथा प्रत्येक जीव को भी परमात्मस्वरूप देखता है। सम्यग्दृष्टि सर्व जीवों को जिनवर जानता है और जिनवर को जीव जानता है। अहा ! कितनी विशाल दृष्टि ! अरे, यह बात बैठ जाए तो कल्याण हो जाए ! परन्तु ऐसी स्वीकृति को रोकने वाले मिथ्या-मान्यतारूपी गढ़ों का कोई पार नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि बारह अंग का सार यह हैं कि जिनवर समान आत्मा को दृष्टि में लेना; क्योंकि आत्मा का स्वरूप तो परमात्मस्वरूप ही है।

ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा है कि त्रैकालिक ज्ञायक भाव ध्रुवस्वरूप है। वही सत्यार्थ है, वहाँ पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहके असत्यार्थ कहा है ; तो फिर वह पर्याय है या नहीं ? ह्न उसकी बात बारहवीं गाथा में कही है कि साधक जीव को आत्मा का अनुभव हो गया है; परन्तु वह जीव पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् अनुभव का पहला समय ऐसा जो जघन्य भाव उसे तो पार कर गया है; किन्तु अभी तक उत्कृष्ट भाव को प्राप्त नहीं हुआ; इसलिए मध्यम भाव को अनुभवता है ह्न ऐसे साधक जीव को पर्याय में शुद्धता-अशुद्धता के अंश हैं ह्न वह व्यवहार है; इसलिए वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, प्रयोजनवान है अवश्य; किन्तु हेयरूप-छोड़नेयोग्य जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदरणीय रूप में जाना हुआ प्रयोजनवान नहीं है। साधक को पर्याय में अशुद्धता वर्तती है, वह व्यवहारनय का विषय है; इसलिए उस-उस समय में व्यवहार को हेयरूप में जाना हुआ, उस काल प्रयोजनवान होने से, उनको व्यवहार का उपदेश दिया गया है।

बाह्य वस्तु बन्ध का कारण नहीं है; क्योंकि बाह्य वस्तु अपनी पर्याय में अतद्भावरूप है; इसलिए वह बन्ध का कारण नहीं होती। कर्म, शरीरादि बाह्य वस्तु परद्रव्य होने से बन्ध का कारण नहीं है ह्न ऐसा कहा और पहली गाथा में कहा कि अनन्त सिद्धों की तेरी पर्याय में स्थापना करता हूँ; परन्तु अनन्त सिद्ध तो परद्रव्य हैं ना ? तेरी पर्याय में अतद्भावरूप है ना ? उनकी स्थापना कैसे होगी ? ह्न तो कहते है कि वे अनन्त सिद्ध पर्याय में भले ही अतद्भावरूप हो; परन्तु अनन्त सिद्धों की प्रतीति पर्याय में आ जाती है, इसलिए अनन्त सिद्धों की स्थापना करने को कहा है। जिसप्रकार अध्यवसान का त्याग करने के लिए बाह्य वस्तु का त्याग करवाया जाता है; उसीप्रकार अपने सिद्धस्वभाव की पर्याय में स्थापना कराने के लिए अनन्त सिद्धों की स्थापना कराई गई है। जिसप्रकार बाह्य वस्तु अध्यवसान का निमित्त है; उसीप्रकार अपने सिद्धस्वरूप का लक्ष्य करने में अनन्त सिद्ध निमित्त हैं।

प्रश्न : द्रव्यस्वभाव में विकार है कि नहीं ? और कारण परमात्मा को पापरूप शूर-वीर शत्रु सेना को लूटनेवाला क्यों कहा ?

उत्तर : यह तो पर्याय से बात कही है। पर्याय में रागादि भाव हैं, वे स्वभावोन्मुख होने पर उत्पन्न ही नहीं होते, उनका नाश किया ह्न ऐसा कथनमात्र कहा जाता है। द्रव्यस्वभाव में तो रागादिभाव या सम्यग्दर्शन, चारित्र, केवलज्ञान, सिद्धपर्याय है ही नहीं। संसार, मोक्ष यह सब पर्यायों का खेल है। द्रव्यस्वभाव में ये सब पर्यायें नहीं हैं। ज्ञायकभाव तो शाश्वत है। तीन कषायों का अभाव करके अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेनेवाले दिगम्बर सन्तो के अन्तर की बात ही गजब की है। ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के सिवा भरतक्षेत्र में अन्यत्र कहीं नहीं है। वे दिगम्बर सन्त कहते हैं कि सर्व जीव सुखी हो ! किसी जीव को दु:ख न हो। सर्व जीव मुक्तदशा को प्राप्त करें। ●

प्रवचनसार अनुशीलन के सन्दर्भ में अभिमत

1. समयसार अनुशीलन की भांति प्रवचनसार की गाथाओं पर आपका **सारगर्भित अनुशीलन अद्वितीय** है।

बिना परिणामी के परिणाम नहीं और परिणाम बिना परिणामी नही ह्न यह हर द्रव्य की वस्तुगत व्यवस्था है। दृष्टि के विषयभूत आत्मा की उपरोक्त निजता सतत् ख्याल में रखना भव्यजीव के लिये अपरिहार्य है। प्रारंभिक गाथाओं के अनुशीलन से यह ध्वनित होता है कि हर पर्याय में ज्ञायक की धुव्रता (स्वभावगत) वर्तमानवत् ही है। पर्याय उत्पाद-व्यय रूप है, तो त्रैकालिक स्वभाव की ध्रुवता भूत-भविष्य एवं वर्तमान में एक जैसी ही है और रहेगी। वर्तमान परिणति के नियमन के लिये त्रैकालिक कारण का भान कराने को प्रेरित करनेवाले ग्रन्थ नियमसार पर भी आपकी गरिमामय लेखनी चले ऐसी मंगलभावना है। **ह्न प्रो.कमलकुमार वैद्य, इन्दौर**

2. आदरणीय डॉ. साहब की सारस्वत लेखनी से समयसार अनुशीलन का कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ, इसकी अत्यधिक प्रसन्नता है। अब आपने प्रवचनसार अनुशीलन का कार्य प्रारंभ किया है, जो **प्रशंसनीय और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण** हैं। स्वामीजी कहते थे की सीमंधर स्वामी के पास से लौटकर भरतक्षेत्र में आने पर आचार्य कुन्दकुन्द ने सर्वप्रथम प्रवचनसार की रचना की होगी; क्योंकि इस ग्रन्थ के अवलोकन से अनायास ही सर्वज्ञ परमात्मा का स्मरण हो आता है। आप आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य जयसेन, कविवर वृंदावनदासजी तथा पूज्य स्वामीजी आदि ज्ञानी महात्माओं के सहयोग से तथा अपनी विवेचक प्रज्ञा से प्रसूत इस अनुशीलन को भी वरद लेखनी द्वारा पूर्णाहूति दे ह्न यही मंगल कामना है। **ह्न राकेशकुमारजी शास्त्री, नागपुर**

3. मेरे श्रद्धेय गुरु डॉ. साहब समयसार अनुशीलन के पश्चात् ही ज्ञानप्रधान प्रवचनसार अनुशीलन को गुरुदेव के सुभाष्य एवं सुविशेष उद्धरणों के साथ लिखने में निमग्न हैं, जिससे मेरे समान अन्य अनेक आत्मार्थी बन्धु वीतराग-विज्ञान मासिक पत्रिका के पाठक होने से लाभान्वित हो रहे हैं। इससे समाज में आध्यात्मिक वातावरण बना रहता हैं, जो सब के लिए परम गौरव की बात है।

समयसार एवं प्रवचनसार अनुशीलन मात्र अध्यात्म प्रेमियों के पठन-चिंतन का विषय न होकर विश्वविद्यालय के साहित्यिक व दार्शनिक विषय के शोधार्थियों के लिए भी तुलनात्मक अध्ययन के अनुसंधान की सामग्री साबित हो रहा है ह्न **जो इस नई शताब्दि को अनुपम भेंट है।**

इस प्रवचनसार ग्रंथ के अनुशीलन का अध्ययन करने पर सर्वज्ञ कथित वस्तु-व्यवस्था का एवं अपने स्व-पर प्रकाशमय ज्ञानस्वभाव का परिज्ञान होने से अपने आत्मवस्तु की दृढ़ आस्था व तत्त्वनिर्णय में परम सहायक बन जाता है। आपके इस श्रेष्ठतम कार्य के लिए मैं आपके स्वास्थ एवं लम्बे जीवन की कामना करता हूँ। **ह्न डॉ. वी.धनकुमार जैन**

(पृष्ठ 1 का शेष .....)

हेरले द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से जैनदर्शन के सिद्धान्तों का एवं जैन संस्कृति का परिचय उपस्थित जनसमूह को कराया गया। इस अवसर पर कोल्हापुर एवं आसपास के लगभग 15 नगरों से **650 आत्मार्थी बन्धुओं** ने शिबिर के माध्यम से धर्मलाभ लिया एवं लगभग **16 हजार रुपयों का सत्साहित्य** घर-घर पहुँचा। जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान के अनेक सदस्य बने। **ह्न जिनचन्दजी आलमान**

38 वाँ पावन वर्षायोग सानन्द सम्पन्न

बीना बजरिया(म.प्र.) : यहाँ मुनि श्री 108 निर्वाणसागरजी का 38 वाँ पावन वर्षायोग दिनांक 12 जुलाई से 24 अक्टूबर 2003 तक सम्पन्न हुआ। जिसके अन्तर्गत निम्न विद्वानों का लाभ महाराजश्री की प्रेरणा एवं समाज के विशेष आमन्त्रण पर प्राप्त हुआ।

1. **पण्डित किशनचन्दजी जैन, अलवर** द्वारा इस अवसर पर पंचपरावर्तन, पंचमेरु-नन्दिश्वर द्वीप रचना तथा जैनागम के करणानुयोग संबंधी विशेष बातों का ज्ञान कराया गया। आप करणानुयोग के रसिक विद्वान है; तथा अपनी सरल शैली द्वारा इस गूढतम विषय का ज्ञान सहजता से कराने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं।

2. पर्यूषण पर्व के अवसर पर **डॉ. रमेशचन्दजी बाझँल, इन्दौर** द्वारा प्रात: समयसार, दोपहर में समाधीमरण, सल्लेखना आदि अनेक विषयों पर तत्त्वचर्चा एवं रात्रि में दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुए।

3. **ब्र.यशपालजी जैन, जयपुर** के प्रात: एवं रात्रि मे प्रवचनसार ग्रन्थ के चरणानुयोग चुलिका पर सारगर्भित प्रवचन हुए तथा दोपहर में पंचलब्धी विषय पर गंभीर विवेचना के साथ शंका समाधान भी सम्पन्न हुआ।

दिनांक 24 अक्टूबर को महाराज श्री का पिच्छिका परिवर्तन समारोह एवं वर्षायोग निष्ठापन समारोह स्थानीय विद्वान पण्डित गुलाबचन्दजी जैन द्वारा विधि-विधान पूर्वक सम्पन्न हुआ।

डॉ. अमृतलालजी मोदी के सफल संचालन में एवं बीना बजरिया जैन समाज मंदिर कमेटी के तत्त्वावधान में सम्पूर्ण वर्षायोग अत्यन्त उत्साह एवं आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ। **ह्न बाबूलाल जैन मधुर, बीना बजरिया**

रविवारीय गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 8 नवम्बर, 2003 को **ध्यान : एक अनुशिलन** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री विनयकुमारजी पापड़ीवाल ने की तथा संचालन नयनेश जैन व संयोजन संदीप जैन ने किया। अतुल जैन, कोलारस एवं एलमचन्द जैन को श्रेष्ठवक्ता के रूप में चुना गया। **ह्न नीरज जैन, खड़ैरी**

मौ (म.प्र.): यहाँ महावीर मित्र मण्डल द्वारा साप्ताहिक गोष्ठीयों की श्रृखंला में रविवार, दिनांक 12 अक्टूबर, 2003 को **शाकाहार** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री मुन्नालालजी जैन ने की तथा निर्णायक गणों में पण्डित अजितजी शास्त्री एवं पण्डित पवनजी जैन, मौ उपस्थित थे। गोष्ठी में प्रथम स्थान विनीत जैन, द्वितीय स्थान रवि जैन एवं तृतीय स्थान विपिन जैन ने प्राप्त किया।

दिनांक 19 अक्टूबर 2003 को **सदाचार** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसकी अध्यक्षता वीतराग-विज्ञान पाठशाला, मौ के संरक्षक श्री महेशचन्दजी जैन ने की। अन्त में श्रेष्ठवक्ता के रूप में रवि जैन, रोहित जैन एवं आशीष जैन को चुना गया। **ह्न प्रशांत जैन, मौ**

एक लघु कथा –

ठूंठ का जवाब

ह्न जयन्तिलाल जैन, नौगामा

वहाँ उस परिसर में सभी वृक्ष हरे भरे एवं फले-फूले हुये थे; परन्तु उनके बीच एक अकेला ठूंठ भी खड़ा था। उसको देखकर एक हरे-भरे वृक्ष ने प्रश्न किया – यहाँ इस परिसर के हम सभी वृक्ष हरे-भरे एवं फले-फूले हैं; फिर आप अकेले ही उजड़े हुये क्यों है ? यहाँ का वातावरण तो सभी के लिये एक जैसा है।

इस प्रश्न का जवाब देते हुये ठूंठ ने कहा – सवाल वातावरण का नहीं; बल्कि सबकी अपनी-अपनी योग्यता (उपादान) का है। मेरी पर्यायगत योग्यता ही ऐसी है तो बाहरी वातावरण (निमित्त) क्या करे ? क्यों तुम नहीं जानते ? सर्वत्र उपादान का ही एक छत्र साम्राज्य छाया हुआ है।

मुझमें बुढ़ापा आ चुका है, जब मैं स्वयं ही हरा-भरा होने की योग्यता खो चुका हूँ, पानी, हवा, धूप आदि ग्रहण करने की योग्यता खो चुका हूँ तो ये सब बाहरी अनुकूलतायें क्या करें ?

मेरी इस पर्याय का काल अब थोड़ा ही बचा है, अन्य पर्याय में जाने की योग्यता का परिपाक होनेवाला है। यह सब बातें तो इसी की सूचक है; इसलिये मैं ठूंठ बनकर रह गया हूँ और आप हरे-भरे हैं।

तो क्या निमित्त से कुछ नहीं होता ? हमने तो सुना है कि कुछ पर्यावरण विरोधी लोग हरे-भरे वृक्षों को काटकर उन्हें असमय में ही मौत के घाट उतार देते है ह्न उस हरे-भरे वृक्ष ने पुन: प्रश्न किया।

तुमने ठीक सुना है; परन्तु उन लोगों की चपेट में वे ही वृक्ष आ पाते हैं, जिनके आयु कर्म का क्षय उसीसमय होना निश्चित हो तथा उस समय ऐसे ही पाप कर्म का उदय हो अथवा यों कहें कि उन वृक्षों के साथ ऐसा ही होने की योग्यता है। आयुकर्म और पापकर्म का उदय-अनुदय भी तो वास्तव में निमित्त ही है।

पर्याय से पर्यायान्तर होने की योग्यता ही उपादान कारण है। आयुकर्म का क्षय और काटनेवाले लोग तो मात्र निमित्त है। उपादान और निमित्त का ऐसा ही सहज सुमेल है; परन्तु स्वतंत्रता फिर भी सदैव सभी जगह कायम रहती है। कोई किसी के आधीन नहीं है – बूढ़े ठूंठ महाशय ने समझाया।

बात कुछ कुछ समझ में आ रही है; परन्तु थोड़ा विस्तार से समझाईये न ? हरे-भरे वृक्ष ने कहा।

इस जगत में बिमारियों की सत्ता भी है और औषधियों की भी सत्ता है, बीमारी के दूर होने में औषधि निमित्त है; परन्तु प्रत्येक औषधि के लिये यह जरूरी कहाँ है कि वह पेट में जाकर बीमारी को दूर करे ही करे। औषधि व्यर्थ में ही पड़ी-पड़ी बरबाद क्यों हो गई ? बीमार व्यक्ति औषधि के अभाव में तड़प-तड़पकर क्यों मर गया ? सीधी सी बात है कि उसप्रकार की योग्यता के अभाव में औषधि के होते हुये भी औषधि का समागम नहीं हो पाया। इससे यही सिद्ध होता है कि सभी जगह उपादान का ही एक छत्र साम्राज्य छाया हुआ है।

भूखा व्यक्ति भूख के कारण तड़पता रहता है और रोटी अथवा भोजन व्यर्थ में ही पड़ा-पड़ा बरबाद हो जाता है, गन्दे नाले में फेंक देने योग्य हो जाता है। क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि वही भोजन बिगड़ने से पहले उस भूखे व्यक्ति के काम आ जाता ? हो सकता था; पर योग्यता के अभाव में ऐसा कैसे होवे ?

जगत में भोजन की कमी नहीं है; परन्तु फिर भी भूखे मरनेवाले भूखे मरते हैं और नष्ट होनेवाला भोजन नष्ट होता है। योग्यता के अभाव में सहज-संयोग संभव ही नहीं है।

क्या यह इस बात की स्वीकृति के लिये पर्याप्त नहीं है कि सर्वत्र उपादान (योग्यता, स्वतंत्रता) ही महत्त्वपूर्ण है – ठूंठ महाशय ने अकाट्य तर्क प्रस्तुत किये।

इस चर्चा के मध्य ही उस परिसर के लगभग सभी वृक्षों ने देखा कि एक बकरी कहीं से दौड़ती हुई आई और एक नन्हें से हरे-भरे पौधे को कुचलती-उखाड़ती हुई चली गई जबकि उसी से सटा हुआ एक अन्य पौधा अभी भी सकुशल खड़ा हुआ मुस्कुरा रहा था।

कुछ देर तक उदासी छाई रही। तभी चुप्पी को तोड़ते हुये एक अन्य बुजुर्ग वृक्ष बोला – ऐसी ही होनहार थी ! बेचारा चपेट में आ गया। बकरी ने बुद्धिपूर्वक तो कुछ किया ही नहीं, अन्यथा दूसरा पौधा सुरक्षित कैसे खड़ा रहता। सबकी अपनी-अपनी आयु की योग्यता है। कोई अल्पवय में चला जाता है तो कोई लम्बे काल तक जीवित रहता है।

बिलकुल ठीक, बिलकुल ठीक सर्वत्र उपादान का ही साम्राज्य है, ठूंठ महाशय बिलकुल सही फरमाते हैं कि – **उपादान बल जहाँ तहाँ, नहीं निमित्त को दाव।** यह तो स्वतंत्रता की बात है, स्वावलम्बन की बात है, सुखी होने के लिये सभी को इसे स्वीकार करना चाहिये ह्न परिसर के लगभग सभी वृक्षों ने ठूंठ की बात का समर्थन किया और वस्तुस्वरूप के अनुकूल चिन्तन में व्यस्त हो गये।

अभी कुछ ही समयव्यतीत हुआ था कि कहीं से आता हुआ एक ट्रक ठूंठ को टक्कर मारते हुये आगे निकल गया। ठूंठ धराशायी हो गया – आयु जो पूरी हो गई थी। उसीप्रकार की योग्यता का परिपाक होने से ठूंठ का आत्मा अन्य क्षेत्र में अन्य पर्याय में चला गया; परन्तु सभी को यह महत्त्वपूर्ण सन्देश दे गया कि – **जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे !** तथा **उपादान बल जहाँ तहाँ नहीं निमित्त को दाव !!** ●

तत्त्वचर्चा

समयसार का सार 79

गतांक से आगे

– डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

जब ऐसा कह दिया कि अपने क्रमनियमित परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव जीव ही है, अजीव नहीं और अजीव अपने क्रमनियमित परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव है, जीव नहीं। तब पर में कुछ करने की बात तो समाप्त हो ही जाती है।

पर में वर्णादि से लेकर रागादि तक के 29 प्रकार के भाव शामिल हैं और उनमें तुम्हें कुछ नहीं करना है – यह आत्मा के अकर्ता स्वभाव की बात है।

किन्तु अपनी पर्यायों के कर्ता तो तुम स्वयं हो ही – ऐसा गाथा का मूल भाव है। तुम अपनी पर्यायों से अनन्य हो, वे तुम्हारी ही है, तुम उनके कर्ता भी हो, भोक्ता भी हो।

गाथा का स्पष्ट भाव यह है कि जो द्रव्य है, वह अपने गुणों/ पर्यायों के रूप में स्वयं उत्पन्न होता है और उन्हीं पर्यायों का वह कर्ता है। अरे भाई ! जो होना है, उसके कर्ता तुम हो, उसकी चिंता के कर्ता तुम नहीं हो।

फिर भी तुम चिन्ता करते हो, तो ऐसा लगता है कि तेरे परिणमन में चिन्ता होना निश्चित है। अरे भाई ! जो होना निश्चित है, उसके लिए चिंता की क्या जरूरत है ? वह अपने क्रमनियमित परिणमन से अपने समय पर अवश्य आ जाएगा, तुम्हें उसके बारे में रंचमात्रा भी सोचने की आवश्यकता नहीं है।

क्रिकेट में गेंद का कैच लेनेवाला यह समझ जाता है कि गेंद किस रफ्तार से आ रही है व किस दिशा में जा रही है, तो वह उसी स्थान पर जाकर खड़ा हो जाता है। क्या कभी उसे ऐसा विकल्प आता है कि गेंद ने यदि बीच में ही रास्ता बदल लिया तो। यदि उसे ऐसा विकल्प आ जाए तो वह कभी कैच ले ही नहीं सकता।

इसप्रकार इन गाथाओं की टीका में क्रमबद्ध की संक्षिप्त चर्चा की।

पर के संबंध में जो यह बात कही कि आत्मा पर का कुछ करता नहीं है, भोक्ता नहीं है; तब फिर भगवान आत्मा क्या करता है ? इस संदर्भ में गाथा कहते हैं –

ण वि कुव्वइ ण वि वेयइ णाणी कम्माइं बहुपयाराइं।
जाइण पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च।।319।।
दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव।।320।।

अनेक प्रकार के कर्मों को न तो ज्ञानी करता ही है और न भोक्ता ही है; किन्तु पुण्य–पापरूप कर्मबंध को और कर्मफल को मात्रा जानता ही है।

जिसप्रकार दृष्टि (नेत्र) दृश्य पदार्थों को देखती ही है, उन्हें करती–भोगती नहीं है; उसीप्रकार ज्ञान भी अकारक व अवेदक है और बंध, मोक्ष, कर्मोदय और निर्जरा को मात्रा जानता ही है।

यह भगवान आत्मा ज्ञानावरणादि कर्म, शरीरादि नोकर्म, राग– द्वेषादि भावकर्म – इन सबका न कर्ता है और न भोक्ता है; अपितु यह भगवान आत्मा कर्म को, कर्म के फल को, बंध को, पुण्य को और पाप को मात्रा जानता है।

आत्मा निर्जरा का भी कर्ता नहीं है, मोक्ष और बंध का भी कर्ता नहीं है; मात्र जानता है। इसप्रकार यहाँ पर को जानने की स्थापना की है।

दूर से देखनेवाला कोई व्यक्ति अग्नि को जलता हुआ देखे तो उसे कोयला भी जलता हुआ दिखेगा और लोहे का गोला भी जलता हुआ दिखेगा; लेकिन कोयला तो अग्नि को जला रहा है और लोहे का गोला जल रहा है। यद्यपि कोयला जलकर के राख हो जायेगा, लोहे का गोला राख नहीं होगा; फिर भी लोहे का गोला अकेला भोगता है, क्योंकि वह अग्नि की शिखा को प्रज्वलित करने में रंचमात्रा भी सहयोग नहीं देता है। जबकि ईंधन अग्नि से जलता भी है और उसे जलने में सहयोग भी करता है। उसे देखनेवाली आँख (दृष्टि) न तो अग्नि को जलाती है और न उससे जलती है। इसप्रकार वह आँख न तो अग्नि के जलने रूप क्रिया की कर्ता ही है और न भोक्ता ही है, वह तो मात्रा जानती है कि यह ईंधन अग्नि को जला रहा है और लोहे का गोला अग्नि से जल रहा है।

जिसप्रकार दृष्टि अग्नि को देखती व जानती तो है, परन्तु उसको करती, भोगती नहीं है; उसीप्रकार ज्ञानी का ज्ञान कर्म को, कर्म के उदय को, निर्जरा को, बंध को और मोक्ष को देखता–जानता तो है; परन्तु उनका कर्ता–भोक्ता नहीं है।

यह 320 वीं गाथा बहुत प्रसिद्ध है। जयसेनाचार्यजी ने मोक्ष अधिकार इस 320 वीं गाथा पर ही समाप्त किया है, जबकि आचार्य अमृतचन्द्र तो इसे पूर्व में ही समाप्त कर चुके हैं।

वास्तविकता यह है कि हमारे पूर्वाचार्य बहुत बड़े चिन्तक थे, वे अपने पूर्वाचार्यों के प्रति भगवान जैसी श्रद्धा रखते थे, उनकी प्रत्येक बात को प्रमाण मानते थे तथा जो भी नई बात समझ में आती, तो उसे भी बहुत दृढ़ता के साथ रखते थे, पर इस भाषा में कि इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है।

कुन्दकुन्दाचार्य ने तो समयसार को अधिकारों में विभाजित किया नहीं था, वह तो टीकाकारों ने ही किया है। अमृतचन्द्राचार्यजी को ऐसा लगा कि यह मोक्ष अधिकार यहीं समाप्त हो गया है। अतः उन्होंने 308 गाथा से सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार शुरू कर दिया और जयसेनाचार्य ने 320 गाथा तक मोक्ष अधिकार को माना।

इस अधिकार में पर के कर्ता और भोक्तापने का निषेध किया है और पर को जानने का समर्थन किया है।

गुरुदेवश्री ने भी कहा था कि बंध और मोक्ष तो जाने जाते हैं।

न तो तुम द्रव्यमोक्ष के कर्ता हो और न ही भावमोक्ष के। इसीप्रकार न ही द्रव्यबंध के कर्ता हो और न ही भावबंध के। यदि तुम बंध के कर्ता होते, तो मोक्ष के भी कर्ता होते। जब तुम बंध के ही कर्ता नहीं हो, तो मोक्ष के कर्ता कैसे हो सकते हो?

इस संदर्भ में जयसेनाचार्य ने अपनी टीका में एक बहुत अच्छा उदाहरण दिया है कि हल्दी होती है पीले रंग की और

चूना होता है सफेद रंग का। दोनों के मिल जाने पर लाल रंग हो जाता है।

उस लाल रंग का कर्ता हल्दी है या चूना ? वह लाल रंग हल्दी का है या चूने का है ? हल्दी का रंग तो पीला है और चूने का रंग सफेद है ? यदि दोनों का मिलकर है – ऐसा कहो तो दोनों से मिलकर तो कुछ होता ही नहीं है और दोनों मिलकर एक क्रिया करते ही नहीं हैं।

कोई कहे कि लाल रंग देखने में तो आ रहा है, तो वह लाल रंग किसका है ?

आचार्य कहते हैं कि वह लाल रंग है ही नहीं, हल्दी और चूना कभी मिलते ही नहीं हैं; क्योंकि दोनों के बीच में वज्र की दीवार खड़ी है।

वे मिले हुए नहीं हैं, अपितु अज्ञानी को मिले हुए दिखते हैं। उस लाल रंग में भी ज्ञानीजन तो चूने को सफेद और हल्दी को पीला ही देखते हैं।

इसीप्रकार आत्मा रागादि का कर्ता अशुद्धनिश्चयनय से है और व्यवहारनय से रागादि का कर्ता पुद्गल है। परमशुद्धनिश्चयनय से तो रागादि होते ही नहीं हैं; इसलिए इस नय से कोई कर्ता नहीं है; क्योंकि परमशुद्धनिश्चयनय तो त्रिकालीध्रुव भगवान आत्मा के अलावा कुछ भी नहीं देखता है। उसकी दृष्टि में रागादिक की सत्ता ही नहीं है।

परमशुद्धनिश्चयनय हल्दी और चूना को कभी मिला हुआ देखता ही नहीं है; वह तो उन्हें पृथक्–पृथक् ही देखता है।

इसप्रकार सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में आत्मा के अकर्तापने और अभोक्तापने की सिद्धि की।

अब आगामी गाथाओं की उत्थानिका रूप अत्यन्त मार्मिक कलश काव्य कहते हैं, जो इसप्रकार है –

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यंति तमसा तताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम्।।199।।

अपने अज्ञान अंधकार के कारण जो लोग आत्मा को पर का कर्ता मानते हैं; वे भले ही मोक्ष के इच्छुक हो; तथापि लौकिकजनों की भांति, उन्हें भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

उत्थानिकारूप 199 वें कलश में जो बात कही गई है; वही बात अब इन गाथाओं में कहते हैं –

लोयस्स कुणदि विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणं पि अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काऐ।।321।।
लोयसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसदि विसेसो।
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाणं वि अप्पओ कुणदि।।322।।
एवं ण को वि मोक्खो दीसदि लोयसमणाणं दोण्हपि।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए।।323।।

लौकिकजनों के मत में देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्यरूप प्राणियों को विष्णु करता है और यदि श्रमणों के मत में भी छहकाय के जीवों को आत्मा करता हो तो फिर तो लौकिकजनों और श्रमणों का एक ही सिद्धान्त हो गया; क्योंकि उन दोनों की मान्यता में हमें कोई भी अन्तर दिखाई नहीं देता। लोक के मत में विष्णु करता है और श्रमणों के मत में आत्मा करता है। इसप्रकार दोनों की कर्तृत्व सम्बन्धी मान्यता एक जैसी ही हुई।

इसप्रकार देव, गुरु, मनुष्य और असुरलोक को सदा करते हुए ऐसे वे लोक और श्रमण – दोनों का ही मोक्ष दिखाई नहीं देता।

एक दृष्टि से देखा जाय तो लौकिकजन ज्यादा अच्छे हैं; क्योंकि उन्होंने तो भगवान को कर्ता माना और स्वयं को अकर्ता माना; किन्तु उक्त श्रमण ने तो यह माना कि मैं कर्ता हूँ।

माथे पर बोझा तो तब बढ़ता है, जब हम स्वयं को कर्ता मानते हैं। ईश्वरवादी का बोझा तो इसलिए उतर जायेगा; क्योंकि वह तो ईश्वर को कर्ता मानता है; उसने तो अपने माथे पर बोझा रखा ही नहीं, लेकिन श्रमणों ने तो अपने माथे पर बोझा रखा है।

जब श्रद्धान की दृष्टि से देखेंगे तो लौकिकजन और श्रमण में कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि लौकिकजन विष्णु को कर्ता मानते हैं और श्रमण आत्मा को। अकर्तास्वभाव को दोनों ने ही नहीं माना।

अरे ! हम गुलाम चाहे अंग्रेजों के रहें या मुसलमानों के, रहे तो गुलाम ही। भगवान ने बचाया तो तू भगवान के आभार से दब जायेगा, मुनिराज ने बचाया तो मुनिराज के आभार से दब जायेगा।

इसप्रकार लौकिकजन और स्वयं को पर का रक्षक माननेवाले श्रमणों – इन दोनों के सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं है। अतएव आचार्य कहते हैं कि मुझे इस लौकिक आदमी और श्रमण – इन दोनों में से किसी को भी मोक्ष होता दिखाई नहीं देता।

कितना कठोर लिखा है आचार्यदेव ने। एक भाई मेरे से कहते थे कि आपने अपनी एक किताब में ऐसा लिखा है कि मुनिराज सांसारिक प्रपंचों से दूर रहते हैं; इसके कारण बहुत हो–हल्ला हो रहा है, इसे आप हटा दें तो अच्छा है।

मैंने कहा – यह तो पण्डित टोडरमलजी का वाक्य है, मैंने तो इसे मात्रा उद्धृत किया है। इसमें तो मुनिराजों की प्रशंसा है, निन्दा नहीं।

इसके बाद इसी भाव का पोषक काव्य कहते हैं, जो इस–प्रकार है –

नास्ति सर्वोऽपि संबंधो परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्वसंबंधबंधाभावे तत्कर्तृता कुतः।।200।।

परद्रव्य और आत्मतत्त्व में कोई भी संबंध नहीं है। इसप्रकार आत्मा का परद्रव्य के साथ कर्तृत्व–कर्मत्व संबंध का अभाव होने से आत्मा परद्रव्य का कर्ता कैसे हो सकता है ?

इस कलश में एकत्व–ममत्व–कर्तृत्व–भोक्तृत्व आदि संभी संबंधों का तो निषेध कर रहे हैं; लेकिन ज्ञाता–ज्ञेय संबंध का नहीं, अपितु इसमें तो पर के साथ ज्ञाता–ज्ञेय संबंध की तो स्थापना की है।

इस सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में सबसे अधिक चर्चा कर्तृत्व–भोक्तृत्व के निषेध की है, एकत्व–ममत्व–स्वामित्व की चर्चा कम है।

ज्ञातव्य है कि डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा समयसार पर किये गये 25 प्रवचन **समयसार का सार** नामक 400 पृष्ठीय पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तक 25/–रुपये में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापूनगर, जयपुर से प्राप्त की जा सकती है।

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

अष्टाह्निका पर्व सानन्द सम्पन्न

1. अलवर (राज.) : यहाँ अष्टाह्निका पर्व के उपलक्ष में पण्डित कैलाशचन्दजी जैन, अशोकनगर के प्रात: समयसार, दोपहर में छहढाला तथा रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर सारगर्भित प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ। इस अवसर पर ऋषिमण्डल विधान का आयोजन भी किया गया।

2. तडंगा(कर्ना.) : यहाँ अष्टाह्निका पर्व के उपलक्ष में श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित राजेन्द्रकुमारजी पाटील, एलिमुन्नोली के द्वारा लघु शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें प्रवचन, कक्षा, एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा समाज को जैनदर्शन के सिद्धान्तों का परिचय कराया गया। **ह्न श्रीमन्त एस. नेज**

3. बांसवाड़ा (राज.) : यहाँ श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (खान्दू कॉलोनी) में अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित मानमलजी जैन कोटा, पण्डित कमलचन्दजी जैन पिड़ावा, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री द्रोणगिरि, पण्डित रितेशजी शास्त्री डडूका, पण्डित आशीषजी शास्त्री टीकमगढ़ एवं पण्डित प्रयंकजी शास्त्री रहली के प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ।

विधि विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित राजकुमारजी शास्त्री द्रोणगिरि, के निर्देशन में विधानाचार्य पण्डित मनीषजी शास्त्री, पण्डित रितेशजी शास्त्री पण्डित आशीषजी शास्त्री एवं पण्डित प्रयंकजी शास्त्री तथा पण्डित वीरेन्द्रजी शास्त्री द्वारा सम्पन्न कराये गये। **ह्न धनपाल जैन, ज्ञायक**

विद्वत सम्मेलन सम्पन्न

सिद्धायतन (द्रोणगिरि) : श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिग. जैन ट्रस्ट, द्रोणगिरी में दिनांक 21 अक्टूबर, 2003 को विद्वत सम्मेलन सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस प्रसंग पर ट्रस्ट को बनाने का उद्देश्य, ट्रस्ट की गतिविधियाँ एवं भावी योजनाओं पर विचार-विमर्श किया गया। इस अवसर पर श्री चन्द्रभान जैन, घुवारा की अध्यक्षता में अ. भा. जैन युवा फैडरेशन की नवीन शाखा द्रोणगिरि का गठन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बाँसवाडा, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी टीकमगढ़ एवं पण्डित बाबूलालजी बांझल गुना एवं पण्डित टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के अनेक स्नातक एवं वर्तमान छात्र उपस्थित थे। **ह्न पंकज जैन, खड़ैरी**

ध्यान दें

जो साधर्मी भाई आर्थिक दृष्टि से कमजोर है तथा गंभीर बीमारी के इलाज व उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए आर्थिक सहयोग की अपेक्षा रखते हैं; वे निम्न पते पर पत्र-व्यवहार करें ह्न

श्री कहान-राज सर्वोदय सहायता योजना,
C/o श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन सर्वोदय ट्रस्ट,
173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई-400002

पुत्र के नाम पिता का पत्र

श्री घनश्यामदासजी बिरला द्वारा अपने पुत्र के नाम लिखा यह मार्मिक पत्र आज के युग में सभी के लिए अत्यंत उपयोगी जानकर यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

चि. पुत्र,

यह जो लिखता हूँ उसे बड़े व बूढ़े होकर पढ़ना। अपने अनुभव की बात करता हूँ। संसार में मनुष्य जन्म दुर्लभ है ह्न यह सच बात है और मनुष्य जन्म पाकर जिसने शरीर का दुरुपयोग किया, वह पशु है। तुम्हारे पास धन है, अच्छे साधन है। उनका सेवा के लिये उपयोग किया, तब तो साधन सफल है अन्यथा वे शैतान के औजार है। तुम इतनी बातों का ध्यान रखना ह्न (1) धन का मौज-शौक में कभी उपयोग न करना। रावण ने मौज-शौक की थी, जनक ने सेवा की थी। धन सदा रहेगा भी नहीं, इसलिए जितने दिन पास में है उसका उपयोग सेवा के लिये करो। अपने ऊपर कम से कम खर्च, बाकी दुखियों का दुःख दूर करने में व्यय करो। (2) धन शक्ति है। इस शक्ति के नशे में किसी के साथ अन्याय हो जाना संभव है, इसका ध्यान रखो। (3) अपनी संतान के लिये यही उपदेश छोड़कर जाओ ह्न यदि बच्चे ऐश आराम वाले होंगे तो पाप करेंगे और व्यापार को चौपट करेंगे। ऐसे नालायकों को धन कभी न देना। उनके हाथ में धन जाय, उससे पहले ही गरीबों में बाँट देना; क्योंकि तुम यह समझना कि तुम उस धन के न्यासी हो और हम भाईयों ने व्यापार को बढ़ाया है तो यह समझ कर कि तुम लोग धन का सदुोग करोगे। (4) सदा यह ख्याल रखना कि तुम्हारा धन जनता की धरोहर है। तुम उसे अपने स्वार्थ के लिए उपयोग नहीं कर सकते. (5) भगवान को कभी मत भूलना, वह अच्छी बुद्धि देता है। (6) इन्द्रियों पर काबू रखना, वरना यह तुम्हें डूबो देंगी। (7) नित्य नियम से व्यायाम करना। (8) भोजन को दवा समझकर खाना। जो स्वाद के वश होकर खाते हैं, वे जल्दी मर जाते हैं और काम नहीं कर पाते।

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) नवम्बर (द्वितीय) 2003
J.P.C. 3779/02/2003-05

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा जयपुर,** डबल एम.ए. (जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन) तथा इतिहास
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127